अब्दुल करीम खाँ

किराना (ज़िला सहारनपुर) निवासी अब्दुल करीम खाँ ने अपने पिता काले खाँ व चाचा अब्दुल खाँ से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। इनके पूर्वज प्रसिद्ध गायक, तंतकार व सारंगी वादक हुए हैं। बचपन से ही खाँ साहब बहुत अच्छा गाने लगे थे। छः वर्ष की आयु में पहली बार संगीत महफिल में गाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देने वाले अब्दुल करीम ने 15वें वर्ष में प्रवेश करते-करते संगीत कला में इतनी उन्नति प्राप्त कर ली कि बड़ौदा नरेश ने उन्हें दरबारी गायक नियुक्त कर लिया। 1902 ई० में वे बंबई आए और फिर मिरज चले गए।

मधुर और सुरीली गायकी वाले अब्दुल करीम खाँ ने 1913 ई० में पूना में 'आर्य संगीत विद्यालय' की स्थापना की। इसकी एक शाखा की 1917 ई० में बंबई में स्थापना की। किसी कारणवश यह विद्यालय 1920 में बंद करना पड़ गया, फिर खाँ साहब मिरज चले गए। खाँ साहब का गायकी का सफर निरंतर चलता रहा। वह गोबरहारी वाणी की गायकी गाते थे। खाँ साहब की गायकी मींड और कण युक्त थी, जिससे उनके आलापों में एक धारा-सी प्रवाहित होती थी। उनके सुरीले संगीत से चित्त बरबस आकर्षित होता था उनकी गायी 'पिया बिन नाहीं आवत चैन' ठुमरी बहुत प्रसिद्ध हुई। अब्दुल करीम खाँ शांतिप्रिय, उदार हृदय तथा फकीर वृत्ति के गायक थे। शास्त्रीय संगीत में ठुमरी गायकी को लोकप्रिय बनाने का श्रेय खाँ साहब को जाता है, इसीलिए उनकी गायकी करुण एवं शृंगार रस से ओतप्रोत होती थी। खाँ साहब की शिष्य परंपरा में प्रसिद्ध गायिका हीराबाई बड़ोदकर, सवाई गंधर्व बहरेबुआ तथा रौशनआरा बेगम का नाम बहुत प्रसिद्ध हुआ।

ऐसा माना जाता है कि मरने से पहले उन्होंने नमाज़ पढ़ी और फिर दरबारी कान्हड़ा के स्वरों में खुदा की इबादत की और इस प्रकार गाते-गाते ही खाँ साहब की मृत्यु 27 अक्टूबर 1937 ई० को हो गई। इनका शव मिरज ले जाकर ख्वाजा भिरा साहब के पास दफना दिया गया। खाँ साहब की गायकी कलामर्मज्ञ विशेष रूप से याद किया करते हैं।